बिहू

ओ मुर अपुनर देश

DOI: 10.528/Zenodo.11063568

अंक : 18

जून -जुलाई 2025

वीथिका ई पत्रिका

साहित्य, कला, संस्कृति, विज्ञान

WWW.VITHIKA.ORG

वीथिका ई पत्रिका

संपादक मंडल

अर्चना उपाध्याय	चित्रा मोहन	सुमित उपाध्याय
प्रधान संपादक	मुख्य सलाहकार संपादक	प्रबंध संपादक

वीथिका परिवार

संरक्षक समिति
डॉ. बिपिन कुमार मिश्र
प्रो. प्रभाकर सिंह

वरिष्ठ सलाहकार संपादक
डॉ. आशुतोष तिवारी

वरिष्ठ सह संपादक
डॉ. सुधांशु लाल

वेब डिज़ाइन
रोशन भारती

प्रकाशक
उज्ज्वल उपाध्याय
यशिका फाउंडेशन, मऊ

संपादकीय समिति

डॉ अरुण कुमार सिंह
डॉ धनञ्जय शर्मा
श्री मनोज कुमार सिंह
एड. सत्यप्रकाश सिंह
श्री बृजेश गिरि
श्री नन्दलाल शर्मा

कवर पेज संपादक
अर्चिता उपाध्याय

कार्टून संपादक
कृतिका सिंह

सलाहकार परिषद
डॉ अखिलेश पाण्डेय
डॉ शिवमूरत यादव

UDYAM-UP 55 0010534

vithikaportal@gmail.com

www.vithika.org

वीथिका ई -पत्रिका

पत्रिका में छपे सभी लेख लेखक के अपने विचार हैं

विषय सूची :

गलियों की बात 04

बिहू : ओ मुर अपुनर देश : डॉ. सुधांशु लाल 05

कवि का संसार : विवेक कुमार मिश्र 08

समकालीन वैश्विक चुनौतियों का समाधान;डॉ देवेन्द्र सिंह 10

सब तज हरि तज: डॉ. बीना शर्मा 14

नमिता की चौपाल : नमिता राकेश 16

मुझमें एक संसार 17

चित्र : संजय राय

चित भूमियाँ : विवेक मिश्रा 18

सोंधी मिट्टी 19

डॉ. रमेश चंद मीणा, अनुपम परिहार, नेहा श्रीवास्तव, डॉ. सन्तोष कुमार मिश्र, क्षमा द्विवेदी, डॉ. स्नेह सुधा, रामावतार सागर

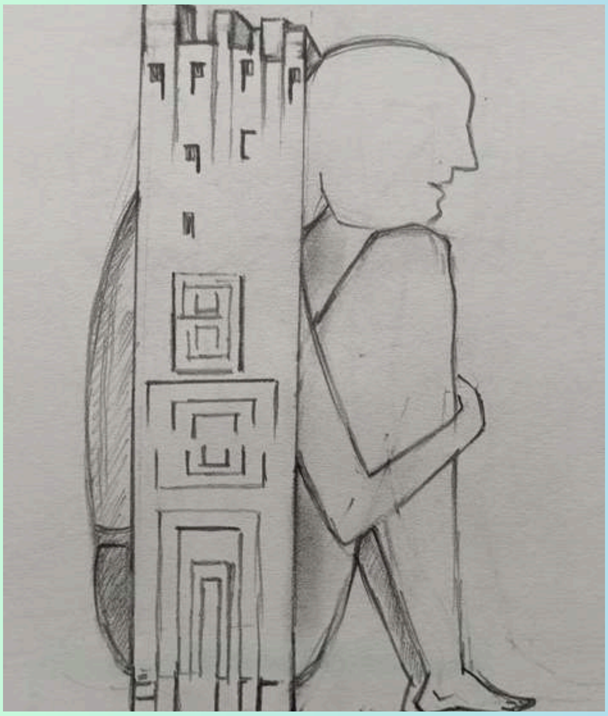

कथावीथी :

बिना पते के पहुंची दादी : विजय गर्ग 24

पुस्तक समीक्षा : 25

यात्राओं की एक सम्मोहक दुनिया : गिरीश पंकज

कृतिका के कार्टून : कृतिका सिंह 27

Visit

WWW.VITHIKA.ORG

to download this current issue to your tablet

वीथिका ई पत्रिका

गलियों की बात

अर्चना उपाध्याय
प्रधान संपादक

भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वाधिक प्राचीन तथा विविधता में एकता के लिए प्रचलित है,जिसमें अनगिनत भाषा, परंपरा, त्यौहार,रीति-रिवाज में भिन्नता के बावजूद लोग आपस में एकजुट होकर रहते हैं तथा सबकी भावनाओं का सम्मान करते हैं।भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता हमें जीवन के अर्थ, उद्देश्य को समझने तथा राह दिखाने में मदद करती है। हमारी संस्कृति में परिवार व समाज को प्रथम स्थान दिया गया है,जिसके बनाए नियम, अनुशासन हमें जीवन में स्थिरता तथा राह भटकने से रक्षा करते हैं। कला और संस्कृति,शिल्प कला जीवन में सौन्दर्य तथा आनन्द का समावेश कराती है । अतः हम गर्व से कह सकते हैं के भारतीय संस्कृति का महत्व विश्व को एकता का संदेश देने में अथाह समृद्ध है।
इस बार आपके समक्ष असम की संस्कृति में मुख्य तथा लोकप्रिय त्यौहार "बिहू"के विषय में बताया गया है। यहां विभिन्न जातीय समूह एकजुट होकर इस त्यौहार को मनाते हैं। बिहू बड़े जोश के साथ असम में नये साल की शुरुआत तथा फसलों की कटाई के समय लोकगीत,नृत्य ,संगीत के माध्यम से मनाते हैं । वास्तव में ये उत्सव ही भारतीय संस्कृति के ब्रांड एम्बेसडर हैं ।
इसी तरह आप सभी पाठकों के अतिशय प्रेम तथा वीथिका परिवार के उन सभी रचनाकारों के अथक प्रयास से विज्ञान, आध्यात्म,साहित्य, संस्मरणों आदि अनेकानेक क्षेत्रों में रोचक यात्रा कराती हुई "वीथिका ई पत्रिका" दो वर्ष पूर्ण कर तीसरे में प्रवेश कर रही है । इसका सारा श्रेय आप सभी को जाता है, इस विश्वास के साथ के आप ऐसे ही अपनी वीथिका को सजाते, संवारते, दुलारते रहेंगे ।

बिहू : ओ मुर अपुनर देश

डॉ. सुधांशु लाल
लखनऊ,उ.प्र.

प्रसिद्ध असमी साहित्यकार लक्ष्मीकांत बेजबरुआ जी ने जब "ओ मुर अपुनर देश" जैसा अद्वितीय गीत लिखा तो मानो उस एक गीत में असमी संस्कृति की सारी मिठास सिमट आयी । भारतीय संस्कृति की अलौकिक उत्सव परम्परा अपने पूर्ण रूप में इस एक गीत में दिखाई दी व साथ ही दिखा अपनी मिट्टी के लिए, अपनी माँ के लिए वह प्यार जो जन्मभूमि के चेहरे को अनवरत निहारने की इच्छा रखता है ।

किसी भी क्षेत्र के उत्सव , पर्व उस क्षेत्र विशेष की पहचान होते हैं , जैसे उत्तर भारत में होली, दिवाली, दशहरा, बिहार में छठ, बंगाल में दुर्गा पूजा, केरल में ओणम, तमिलनाडू में पोंगल, महाराष्ट्र में गणेश चतुर्थी, कर्नाटका में उगादी, गुजरात में नवरात्री, पंजाब में बैसाखी, उसी प्रकार हमारे देश के पूर्वोत्तर (नार्थ ईस्ट) के सात बहनों में से एक सबसे बड़े राज्य असम का सबसे बड़ा त्यौहार बिहू है। हालाँकि की हममें ज्यादातर लोग पूर्वोत्तर के बारे में कम ही जानते हैं और उसके त्योहारोंऔर सस्कृति के बारे में और भी कम जानते हैं। भारत का सबसे बड़ा राज्य जो की अपनी चाय और एक सिंह वाले गैंडे (जो की काजीरंगा के जंगलो में पाया जाता है) के लिए प्रसिद्ध है।

उसी प्रदेश का सबसे बड़ा त्यौहार बिहू है, जो की असम की सास्कृतिक पहचान के रूप में जाना जाता है। बिहू पर्व असम का सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक उत्सव है, जो इस क्षेत्र की कृषि और प्राचीन परंपराओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। यह वर्ष में तीन बार मनाया जाता है—बोहाग बिहू (रोंगाली बिहू), माघ बिहू (भोगाली बिहू), और काती बिहू (कोंगाली बिहू) —यह असम की सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और भौगोलिक विशेषताओं को दर्शाता है।

बिहू केवल एक त्योहार नहीं है, बल्कि असमिया पहचान और धड़कन है। यह कृषि, मौसम परिवर्तन और असमिया लोक कथाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। भारत के कई अन्य त्योहारों के विपरीत, जो हिंदू पौराणिक कथाओं से जुड़े हैं, बिहू की उत्पत्ति जनजातीय और कृषि-आधारित है। बिहू की उत्पत्ति कब हुई या इसे कब से मनाया जाना शुरू किया गया इसके बारे के में तो कोई ऐतिहासिक प्रमाण तो नहीं मिलते लेकिन सांस्कृतिक साक्ष्य के आधार पर ये माना जाता है कि इसकी शुरुआत बोडो और कछारी जनजातियों के द्वारा हुई और वे इसको खेती या उर्वरता को बढ़ाने के पर्व के रूप में मानते थे और धीरे-धीरे ये पर्व असम की अनके जनजातियों और अहोम समुदाय द्वारा मनाया जाने लगा और आगे चल कर ये असम की सांस्कृतिक पहचान के रूप में माने जाने लगा । यह पर्व किसी कठोर धार्मिक अनुष्ठान की तरह न होकर बहुत ही लचीला और हलके-फुल्के मस्ती भरे माहोल में मनाया जाता है, विभिन्न जनजातियों का इसको मानाने का तरीका बिलकुल भिन्न है इसमें प्रमुख रूप से अग्नि (मेजी), पृथ्वी और फसल

देवताओं की पूजा की जाती है परन्तु इसमें भी कोई कठोर या विशुद्ध परम्परा नहीं है, अलग-अलग जनजातियाँ और अलग-अलग क्षत्र के लोग इसको अलग-अलग तरीके से मानते हैं। कालांतर में उत्तर भारत के शैव व वैष्णव परम्परा के आगमन से बिहू में भी कुछ बदलाव आये और और इन परम्पराओं का स्पष्ट प्रभाव बिहू में देखने को मिलता है। वैष्णव परंपरा के प्रभाव के कारण भगवान श्री कृष्ण की आराधना बिहू से जुड़ गयी और आज असामी लोग इसी बोहाग बिहू या रोंगली बिहू के नाम से मानते है, यह पर्व नए वर्ष का भी पर्व जिसे से 14 अप्रैल से लेकर 20 अप्रैल तक मनाया जाता है, यह नयी फसल के शुरुआत का उत्सव है। उसी प्रकार काती बिहू या कोंगली बिहू कार्तिक मास (अक्टूबर) के पहले दिन मनाया जाता है, जो की अच्छी फसल के लिए माने जाता है, इस मास में फसल खड़ी तो होती है परन्तु खाने लिए तैयार नहीं होती तो पुराने समय में खाने की बहुत समस्या होती थी इसलिए इसे कंगाली बिहू भी खाते है इसमें महिलाएं तुलसी और भंडार गृह के सामने दीपक जलती हैं है ताकि फसल अच्छी हो और भंडार भरा रहे। फसल के पकने और कटाई पर माघ बिहू या भोगली बिहू मनाया जाता है जो की 14-15 जनवरी से शुरू हो कर पूरे माघ महीने में मनाया जाता है, आजकल शहरीकरण के कारण ज्यादातर शहरों में इसे सिर्फ 14- 15 जनवरी को ही

मनाते हैं। हिन्दू संस्कृति कृति के प्रभाव से आजकल इसमें देवी लक्ष्मी की पूजा भी करते हैं। गोरु बिहू भी इसी बिहू का एक भाग है जिसमे लोग पशुओं की पूजा करतें है, कुछ-कुछ गोवर्धन पूजा की तरह, इसमें महिलाएं पारंपरिक मिठाईयां जैसे पीठा और लारू बनाती हैं उसी समय पुरुष मेजी (अग्नि) का इन्तेजाम करते हैं।

बिहू धार्मिक न होकर सांस्कृतिक पर्व ज्यादा है इसलिए संगीत और नृत्य इसका काफी अहम हिस्सा है, महिलायें अपने पारंपरिक परिधान मेखला चादोर (मूंगा रेशम से बना साड़ी जैसा पारंपरिक परिधान) और पुरुष धोती और गमोछा (असामी पारंपरिक गमछा जो की सफ़ेद पर लाल धागे से बने डिजाईन होता है) पहन कर नृत्य करते हैं । इस नृत्य में हाँथ को पीछे कर कूल्हे को हिलाया जाता है और एक धुन में ताली बजा कर नृत्य किया जाता हैं , इस नृत्य के ताल देने के लिए अलग -अलग तरीके के वाद्ययंत्र जैसे ढोल (ड्रम), पेपा (भैंस के सींग से बना), गोगोना (बाँस का वाद्य) का इस्तेमाल किया जाता है ,बिहू गीत प्रेम, प्रकृति और ग्रामीण जीवन के केंद्र में होते हैं ।बाद में वैष्णव परम्परा के प्रभाव से भक्ति-संगीत भी बिहू का अभिन्न अंग बन चूका है।

इसमें महिलायें और पुरुष बराबरी में हिस्सा लेते हैं और नृत्य और संगीत का आनंद लेते हैं। इससे कहीं न कहीं लैंगिक समानता का भी बोध होता है । इसके अलवान बिहू हुसंरी की परम्परा में लोग समूह बना कर एक दुसरे के घर जाते हैं जिससे सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा मिलता है। बिहू केवल हिन्दू धार्मिक त्यौहार न होकर असम की सांस्कृतिक पहचान है ।

असम में रहने वाले सभी जनजातियां, अहोम और असम की मुसलमान जनजातियाँ भी उसी धूम-धाम से बिहू पर्व मनाती हैं इसलिए बिहू एक साम्प्रदायिक सौहार्द का भी पर्व है । बिहू एक जीवित परंपरा है जो अपने मूल को बनाए रखते हुए अलग-अलग लोगों को जोड़ती है । यह केवल एक त्योहार नहीं, बल्कि असम की पहचान है, जो धर्म, समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और भूगोल को एक साथ जोड़ती है।

कवि का संसार

विवेक कुमार मिश्र
वरिष्ठ साहित्यकार
कोटा, राजस्थान

कविता एक कवि की दुनिया होती है, कवि का संसार, कवि की सृष्टि और कवि का संकल्प । यह भी कह सकते हैं कि कविता में कवि के स्वप्न और आकांक्षा को इस तरह से जगह मिलती है कि वह क्या सोचता है वह क्या करना चाहता है और जो दुनिया जो संसार उसे मिला है उस संसार को वह कैसे देखना चाहता है, यह सब एक कवि की कविता में दर्ज होता है । पाठक के लिए जरूरी होता है कि वह कवि के उस संकेत को भी पढ़ें जो उसकी आंखों में समाया है, उस स्वप्न का भी पाठ करें जो कवि की कविताओं में मौजूद है और यह सब जानने के लिए कवि की एक दो चार नहीं असंख्य कविताओं को, उसकी टिप्पणी को और उसके द्वारा जो कुछ लिखा गया है उसे बार बार देखते हुए समझने की कोशिश में उस रहस्य पर से पर्दा हटता है जो कविता में मौजूद होता है और जो उपर से देखने पर अलक्षित ही रह जाता है । सजग और सचेत पाठक ही कविता का सही अर्थ करते हैं और उस स्वप्न का पीछा करते हैं जो कवि के यहां देखा गया था । कवि को बार बार पढ़ना चाहिए तभी कवि के और कविता के अर्थ खुलते हैं । एक कवि सबसे पहले अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है यदि कवि के होने का , उसकी सत्ता का कोई अर्थ नहीं बनता तो फिर कवि को अपने कर्म कविता पर फिर से विचार करने की जरूरत है । हो सकता है कि कवि वह कविता लिख ही नहीं रहा हो जो कवि को अपने संसार से बाहर निकल कर वृहत्तर समाज से जोड़ने में मदद करती हों । यह भी हो सकता है कि कवि केवल उपस्थिति दर्ज कराने भर के लिए ही लिख रहा हों तो इससे कविता का और समाज का काम नहीं चलता । कविता और समाज की गति में जब तक कवि की उपस्थिति कवि की आंखों का तर्क जब समाज की धड़कनों को नहीं सुनेगा तब तक कवि का कविता का और कवि की उपस्थिति का कोई अर्थ नहीं बन पाता । कविता में कवि स्वयं की मुक्ति से कहीं ज्यादा अपनी दुनिया और अपने समाज की मुक्ति देखता है । कवि के यहां मुक्ति का अभिप्राय दार्शनिक अर्थ की मुक्ति से नहीं होता। एक कवि की मुक्ति अपने समाज को सामाजिक संदर्भों में वो सारी सुविधाएं प्रदान करना होता है जो एक नागरिक का लक्ष्य होता है। कवि हमारे नागरिक समाज का वह नागरिक है जो अपनी दुनिया को बदलने से पहले अन्य की दुनियाओं को बदलने के लिए संघर्ष करता है। कवि की इस चाह को - मुक्तिबोध के यहां बहुत साफ शब्दों में देखा जा सकता है -

समस्या एक मेरे सभ्य नगरों व ग्रामों में
सभी मानव
सुखी सुंदर व शोषणमुक्त कब होंगे ?
- मुक्तिबोध

यह चिंता अकेले मुक्तिबोध की नहीं है यह समस्या प्रसाद के यहां है और हर सजग कवि की चिंता इस बोध के साथ ही होती है। उसकी आंखों में सभी जन के सुखी होने की कामना दर्ज होती है। यह स्वप्न अपने समय की यातना और पीड़ा से साक्षात्कार के बाद संभव होता है। कवि और कविता की जो प्राप्ति है वह गहरी साधना की बात है वह अपने को पूरी तरह से डूबा देने की ही छवि से साक्षात्कार हैं । असाध्य वीणा में अज्ञेय के यहां भी जो तथता है वह अपनी समूची सत्ता को डूबों देने का ही परिणाम है। असाध्य वीणा का साधक प्रियवंद केशकंबली जब वीणा को साधते हैं तो यहीं स्थिति है -

‘श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में–
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था–
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।’

यह जो कवि की वाणी है वह अपने भीतर पूरे इतिहास को , सभ्यता और संस्कृति को एक साथ लेकर बैठी होती है कविता की व्याख्या किसी एक कोण से ही संभव नहीं होती है।

हमें उन समस्त कोणों को उन बातों को देखना होता है जो कविता के संदर्भ में मौजूद होते हैं । कविता कवि के शब्द संसार से लेकर उस पाठक के शब्द संसार तक जाती है जिससे वह जीवन जीता है और जीने के लिए वे सूत्र हासिल करता है जो कवि के द्वारा प्रदत्त होते हैं । एक कवि की वाणी में उसके समय का दर्द ही बयान नहीं होता बल्कि उस दर्द से साक्षात्कार करते हुए उस दर्द से मुक्ति का रास्ता दिखाया जाता है । हर युग को समझने के लिए हमें कवि की उन आंखों को देखना होता है जिसमें युग संसार को अनुभव में ढालकर रचा गया है । अनुभव से सनी ये आंखें ही अपने समय का असली चेहरा होती हैं और समय का संवेदनशील इतिहास भी होती हैं । वह इतिहास जो किसी इतिहासकार के हाथों से नहीं लिखा जाता, जिसमें किसी की कोई रूचि नहीं होती, जिसे समाज का महत्वपूर्ण वर्ग ध्यान देने लायक भी नहीं मानता वह सब कवि की आंखों का केंद्रीय विषय होता है और इसे जानना पढ़ना आने वाले समय की विकास रेखा को जानने के लिए जरूरी हो जाता है । कवि की कविताएं शहर के प्लानर के लिए भी बहुत काम की होती हैं और उन सबके लिए महत्वपूर्ण होती हैं जिनकी रूचि स्वयं के समय के साथ साथ भविष्य के समय को गढ़ने में होती हैं। युग का मुहावरा रचने के लिए कोई और नहीं कवि ही आगे आता है । कवि द्वारा अपने समय के काव्य मुहावरे में जहां बात करनी होती है वहीं स्वयं हर कवि का अपना एक मुहावरा होता है उसका एक अलग ही रास्ता होता है । एक युग के यदि दस कवि हैं और वास्तव में वे कवि हैं तो उनका काव्य मुहावरा भी अलग अलग ही होगा । कोई भी कवि दूसरे कवि की प्रतिकृति नहीं होता न ही प्रतिकृति का कोई बड़ा प्रभाव कहीं दर्ज होता है । कुछ दिन के लिए किसी को भी कवि लेखक होने का कुछ भ्रम बना जाये , हो सकता है कि कुछ लोग अपने आप को महत्वपूर्ण ढ़ंग से घोषित भी करते चलें कि इस दौर के कवि तो वो हैं ही पिछला दौर भी उन्हीं के सहारे चल रहा था । यह कथन केवल कविता के संदर्भ में ही सत्य हो ऐसा नहीं है सभी विधाओं में ऐसी ही स्थितियां बनी रहती हैं । हर युग में वही कवि बोलता है या उसी कवि की वाणी को समय संसार सुनता है जो अपना अलग पथ और अलग मुहावरा बना कर चलता है । अपने कहने की नवीनता के कारण सबसे पहले वह कवि अपनी ओर आकर्षित करता है । फिर उस कवि का मुहावरा अपनी भाषा में, अपनी परंपरा में कहां से शुरु होता है और कहां से वह एकदम से नया हो जाता है यह देखना जरूरी होता है । बड़ा कवि अपनी यात्रा अपने तर्कों से करता है । उसे किसी और का काव्य तर्क उतना मदद नहीं करता जितना कि स्वयं उसका तर्क । कवि का अपना ही संसार होता है जिसे वह अपनी कविताओं से रचता है। कविता के संसार में जो कवि है और जो दुनिया उसके शब्दों से रची जाती है उसे समझने की और बरतने की ईमानदारी कवि संसार के साथ उस पाठक की भी होती है जो कविता को पढ़ता है ।

एक कवि को चाहिए कि वह कविता में अपने समय का समाजशास्त्र लिखे अपने समय की सामाजिकी का अध्ययन करता चलें और बराबर से उस ओर इशारा करते चलें जिधर समाज जा रहा है । समाज की स्वाभाविक गति को पहचाने और समाज की क्या आवश्यकता है ? समाज क्या चाहता है? इस दिशा में कविता को कार्य करना चाहिए । किन कवियों की कविताएं अपने समय और समाज का भाष्य कर रही हैं, अपने समाज के यथार्थ का बयान किन कवियों के यहां हो रहा है । इसे पढ़ना जरूरी होता है । कवि यदि केवल मुठ्ठी भांज भांज कर बस लिख रहा है तो उसका संवेदना के विकास और इतिहास से कोई लेना-देना नहीं होता । वह चलते चलते बस कुछ शब्दों का जोड़ तोड़ भर कर रहा है जिसे कविता की परिभाषा में या कविता के इतिहास में दर्ज नहीं किया जा सकता । कविता न तो किसी कवि की प्रतिकृति होती है न ही किसी अन्य कवि की छाया कविता होती है । एक सीमा तक छाया कविताएं अपना प्रभाव छोड़ती हैं पर छाया तो छाया ही है और उससे मूल कविता का आनंद और संघर्ष कहां लिखा जा सकता है । एक सच्चे कवि का अपने समय में हस्तक्षेप तभी होता है जब वह सामाजिक सच्चाई को कविता के तंत्र में गढ़ता है । कविता में युग की पीड़ा और युग के शब्द इस तरह से आ जाते हैं कि इसमें वह अपने जमाने के सच को भी देख लेता है और भविष्य के सच का भी साक्षात्कार कराता चलता है । यहीं से एक कवि की वास्तविक पहचान शुरू होती है ।

भारतीय चिन्तन परम्परा : समकालीन वैश्विक चुनौतियों का समाधान

डॉ. देवेन्द्र सिंह
डीन, मानविकी संकाय
महाराजा सुहेल देव विश्वविद्यालय
आज़मगढ़

भारतीय चिन्तन परम्परा ऋषियों, तपस्वियों के हजारों-लाखों वर्षों के परिश्रम से उपजी एक ऐसी प्रयोगशाला है जिसने समय-समय पर सम्पूर्ण विश्व को अपने दर्शन व मूल्यों के माध्यम से एकता, शांति और कल्याण का मार्ग दिखाया है । वस्तुतः भारतीय चिन्तन के केंद्र में सदैव 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसी अवधारणाएँ रहीं हैं । ये दोनों विचार न केवल भारत के सांस्कृतिक वैचारिक दृष्टिकोण को व्यक्त करते हैं, बल्कि विश्व के समक्ष एक ऐसी मानवतावादी विचारधारा प्रस्तुत करते हैं, जिसकी प्रासंगिकता आज के वैश्विक परिदृश्य में और भी अधिक बढ़ गई है। संकीर्ण राष्ट्रीयता, युद्ध, आतंकवाद, पर्यावरण संकट और सामाजिक विषमता से जूझ रहे वर्तमान विश्व को यदि कोई सच्चा मार्गदर्शन मिल सकता है तो वह इन्हीं भारतीय मूल्यों में निहित सार्वभौमिक प्रेम और करुणा के सिद्धांतों से मिल सकता है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारतीय सांस्कृतिक चेतना की वह अत्यंत विशिष्ट अवधारणा है, जो सम्पूर्ण पृथ्वी को एक परिवार के रूप में स्वीकार करने की प्रेरणा देती है। इस संस्कृत वाक्य का शाब्दिक अर्थ है-'वसुधा एव कुटुम्बकम' अर्थात् 'यह सम्पूर्ण पृथ्वी ही हमारा परिवार है।' यह विचार किसी सीमित भौगोलिक सीमा, जाति, धर्म, भाषा या सांस्कृतिक पहचान में नहीं बंधता, बल्कि समस्त मानव जाति के बीच सहयोग, करुणा, सह-अस्तित्व और बंधुत्व की भावना को स्थापित करता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' का मूल श्लोक महाउपनिषद् में प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है-'अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम। उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम॥' अर्थात् यह मेरा है और वह पराया है इस प्रकार का भेदभाव संकीर्ण दृष्टि

वाले लोग करते हैं, किंतु जिनका हृदय विशाल होता है, उनके लिए सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार के समान होती है।

'वसुधैव कुटुम्बकम' का तात्पर्य यह है कि मानव मात्र को राष्ट्र, जाति, सम्प्रदाय और भाषा की सीमाओं से ऊपर उठकर एक-दूसरे के प्रति पारिवारिक भाव का व्यवहार करना चाहिए। यह केवल एक दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि भारतीय जीवन-दृष्टि की व्यावहारिक परंपरा का मूल मंत्र है। गांधीजी का अहिंसा का सिद्धांत और उनकी वैश्विक दृष्टि इसी वसुधैव कुटुम्बकम् की व्यवहारिक अभिव्यक्ति थी। स्वामी विवेकानंद ने भी अपने ऐतिहासिक शिकागो भाषण में इस अवधारणा को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करते हुए भारतीय संस्कृति की इस महान परंपरा का परिचय दिया। उन्होंने कहा था कि "भारत वह भूमि है जिसने सम्पूर्ण विश्व को सहिष्णुता और सार्वभौमिक स्वीकृति का पाठ पढ़ाया है। उनके अनुसार, वसुधैव कुटुम्बकम् केवल एक वैचारिक आदर्श नहीं, बल्कि मानवता की मूल आवश्यकता है।"यदि समकालीन वैश्विक नीतियों में इस विचार को स्थान मिले, तो निश्चय ही एक शांतिपूर्ण, सहयोगमूलक और समरस समाज की स्थापना संभव हो सकती है।

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' भारतीय सांस्कृतिक चेतना का वह अमर संदेश है, जो सम्पूर्ण सृष्टि के सुख, शांति और समृद्धि की कामना करता है। इस श्लोक का उल्लेख यजुर्वेद और बृहदारण्यक उपनिषद् में मिलता है,

"सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत॥

अर्थात 'सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त हों, सभी मंगलमय दृष्टि से संसार को देखें और कोई भी दुःख का भागी न बने।'

यह श्लोक न केवल एक धार्मिक प्रार्थना है, बल्कि यह सम्पूर्ण मानवता के लिए एक सार्वकालिक कल्याणकारी संदेश है। इसमें किसी भी प्रकार की सीमाएं, भेदभाव अथवा संकीर्ण स्वार्थ नहीं हैं। इसका भाव यह है कि व्यक्ति केवल स्वयं के लिए न सोचे, बल्कि सम्पूर्ण जगत के सुख और मंगल की कामना करे। यह दृष्टि एक ऐसी विश्व-परिकल्पना प्रस्तुत करती है जिसमें सभी प्राणी एक समान हैं और उनके कल्याण की कामना मानव का सबसे बड़ा धर्म है। भारतीय चिंतन में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का संदेश केवल आध्यात्मिक प्रार्थना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक दृष्टि और वैश्विक कूटनीति में भी लागू हो सकता है। स्वामी विवेकानंद ने भी इसी भावना को अपने भाषणों में बार-बार दोहराया। उन्होंने कहा कि 'यदि कोई धर्म सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का संदेश नहीं देता, तो वह धर्म नहीं है, मात्र संकीर्ण विचार है।' उनके अनुसार 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना मनुष्य को वैश्विक नागरिक बनाती है, जो संकीर्ण राष्ट्रवाद या जातिवाद से ऊपर उठकर सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति करुणा रखता है। इस भारतीय सोच के साथ जब हम पश्चिमी विचारकों की तुलना करते हैं तो पाते हैं कि अरस्तु ने अपने Common Good (सामूहिक भलाई) के सिद्धांत में यही कहा कि 'सच्चा मनुष्य वह है जो सबके सुख के लिए कार्य करता है।' इसी प्रकार इमैनुअल कांट ने नैतिकता की सबसे ऊँची कसौटी यह मानी कि 'ऐसा आचरण करो जैसे तुम्हारा हर कार्य एक सार्वभौमिक नियम बन जाए। कांट के इस सिद्धांत में भी मानव मात्र के हित की भावना अंतर्निहित है। नेल्सन मंडेला ने अपने जीवन दर्शन में Ubuntu की भावना को अत्यधिक

महत्व दिया। 'उबुन्टू' एक अफ्रीकी जीवन-दृष्टि है, जिसका सार्थक अर्थ है-'मैं हूं क्योंकि हम हैं। अर्थात किसी व्यक्ति का अस्तित्व, उसकी पहचान, और उसकी सम्पूर्णता समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। मंडेला के अनुसार, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जो अकेले पूर्ण नहीं हो सकता। उसका सुख, उसकी उन्नति और उसका जीवन समाज से ही अर्थ पाते हैं। इस प्रकार 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' न केवल प्रार्थना है, बल्कि एक जीवन दर्शन है, जो बताता है कि सच्ची मानवता वही है जो दूसरों के सुख में अपना सुख देखे। आज जब पूरी दुनिया युद्ध, आतंक, गरीबी और पर्यावरणीय संकट से जूझ रही है, यह प्राचीन भारतीय विचार विश्व समुदाय को शांति, सहयोग और करुणा का स्थायी मार्ग दिखा सकता है।

आज का विश्व भौतिक प्रगति के शिखर पर पहुँचकर भी युद्ध, आतंकवाद, पर्यावरण संकट, असमानता, धार्मिक कट्टरता, और सामाजिक विखंडन जैसी जटिल समस्याओं से जूझ रहा है। इन चुनौतियों का समाधान केवल राजनीतिक या आर्थिक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि ऐसी मानवीय और सांस्कृतिक दृष्टियों से संभव है जो शांति, सहयोग, सहिष्णुता और समग्र कल्याण का मार्ग दिखा सकें। भारतीय सांस्कृतिक धारा, जो 'वसुधैव कुटुम्बकम', 'सर्वे भवन्तु सुखिनः', 'अहिंसा परमो धर्मः' और 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' जैसी जीवनदर्शी अवधारणाओं से सिंचित है, इन वैश्विक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' यह सिखाता है कि पूरी पृथ्वी एक परिवार है, इसलिए किसी एक राष्ट्र, जाति या धर्म की सीमाओं में बंधकर समाधान की अपेक्षा करना तात्कालिक और अधूरी सोच है। जब तक वैश्विक स्तर पर सह-अस्तित्व और पारस्परिक सम्मान को स्वीकार नहीं किया जाएगा, तब तक संघर्ष समाप्त नहीं हो सकते। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना यह संकेत देती है कि समाज, राष्ट्र या विश्व के किसी कोने में यदि कोई दु:खी है, तो हमारी जिम्मेदारी है कि हम उसके दु:ख को भी समाप्त करने का प्रयास करें। इस विचार में मानवाधिकार, समानता और न्याय की वह गहरी चेतना अंतर्निहित है जो आज के समय में अत्यधिक प्रासंगिक है।

भारतीय अवधारणाएं हमें यह भी सिखाती हैं कि पर्यावरण के साथ सामंजस्य बनाकर रहना चाहिए। 'पृथ्वी माता' और 'नदियों को देवी' मानने की भारतीय परंपरा प्रकृति के प्रति एक कृतज्ञ और संवेदनशील दृष्टि का उदाहरण है। वैश्विक समस्याओं के इस युग में भारतीय अवधारणाएं एक ऐसी सांस्कृतिक शक्ति के रूप में उभरती हैं, जो विश्व शांति, मानव कल्याण, सामाजिक समरसता, और प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता की नई राह दिखा सकती है ।

वर्तमान युग की सबसे बड़ी वैश्विक चुनौती जलवायु संकट है, जो इस विचारधारा से गहराई से जुड़ती है। जब हम पूरी पृथ्वी को परिवार मानेंगे, तभी हम पर्यावरण संरक्षण के लिए गम्भीर कदम उठा पाएंगे। यह दृष्टि केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं रहती, बल्कि समस्त जीव-जगत, वनस्पतियों और प्रकृति के हर घटक के साथ गहन जुड़ाव को स्वीकार करती है। भारत की विदेश नीति में भी 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा विशेष रूप से उभर कर सामने आई है। जैसे G-20 शिखर सम्मेलन 2023 में भारत ने 'One Earth, One Family, One Future' का नारा देकर यह स्पष्ट कर दिया कि भारत की वैश्विक सोच इस प्राचीन भारतीय दर्शन से ही प्रेरित है।

आचार्य विनोबा भावे ने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के मर्म को रचनात्मक कार्यक्रमों के माध्यम से प्रतिपादित करते हुए कहा था कि जब तक समाज के अंतिम व्यक्ति के जीवन में सुख और शांति नहीं पहुँचती, तब तक सभ्यता अधूरी है। इस प्रकार, 'वसुधैव कुटुम्बकम' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' न केवल भारत के सांस्कृतिक मूल्य हैं, बल्कि आज की विश्व–व्यवस्था के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत हैं। ये दोनों अवधारणाएं हमें यह सिखाती हैं कि एक समरस, शांतिपूर्ण, समतामूलक और पर्यावरण–संवेदनशील समाज की स्थापना ही मानवता का सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए।

सब तज हरि भज

डॉ.बीना शर्मा
पूर्व निदेशिका
केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

विनय पत्रिका का एक एक पद भाव विभोर कर देने वाला है फिर चाहे वह दैन्य हो स्तुति हो आत्म ज्ञान हो चेतावनी हो या अपनी मूढ़ता मूर्खता जडता की स्वीकृति। भक्ति की पराकाष्ठा अहम क़ा विलय है। अपने को सौपना हर किसी के बस का नहीं होता। कौन कहता है भला मैं छोटा हूं खोटा हूं दीन हूं। हम संसारी जीव तो मांगते भी अकड़ से हैं देगा कैसे नहीं देना पड़ेगा। पर तुलसीदास को पढ़ते हुए लगता है उनकी रचनाओं को एक बार नहीं कई कई बार पढ़ा जाना चाहिये। केवल पाठ्यक्रम के ब्याज से ही नहीं स्वाध्याय की दृष्टि से इन ग्रंथों का अध्ययन और समझ के साथ पढ़ना और आत्मसात करना बहुत जरूरी है। बस जब बोध जग जाये तभी सवेरा मान लेना चाहिए। उसी टर्निंग पॉइन्ट से जिन्दगी में बदलाव आने लगता है। पता नहीं कितना कितना पढ़ा होगा उम्र के इस मोड़ तक आते पर इन रचनाओं के आगे सब बौना हो गया है। अभी तक तो अर्थकरी विद्या की प्रधानता रही। विष्णु पुराण का श्लोक कहाँ याद रहा कि सा विद्या या विमुक्तये । आया- साया कर्मों में ही उलझ कर रह गए। कर्मों की निपुणता कुशलता और शब्दों की जादूगरी को ही विद्या का पर्याय मानते रहे।कभी सुमिरन भजन किया भी तो आसन्न विपत्ति और दुख के क्षणों में और जैसे ही उससे मुक्त हुए बस राग-रंग में सब भूल गए ।कबीर की वाणी को सिद्ध करते रहे दुख में सुमिरन सब करें दुख में करे न कोय जो सुख में सुमिरन करेतो दुख काहे को होय। कुंती की तरह दुख नहीं मांग पाते कि सुख के माथे सिल परे जो भगवद नाम भुलाए। बलिहारी बा दुख की जो पल पल नाम रटाय।

विनय पत्रिका के पद संख्या 66 राम जपु ,राम जपु ,राम जपु ,बावरे । घोर -भव -नीर -निधि नाम निज नाव रे।।1।। एक ही साधन सब रिद्धि-सिद्धि साध रे। ग्रसेकलि- रोग जोग संजम समाधि रे।।2।। भलो जो है ,पोच जो है, दाहिनो जो बाम रे। राम -नाम ही सो अंत सब ही को काम रे।।3।।जग नभ वाटिका रही है फलि फूलि रे।धूँआ कैसे धौरहर देखि तू न भूलि रे ।।4।।राम -नाम छोड़ि जो भरोसो करै और रे ।तुलसी परोसो त्यागि मांगे कूर कौर रे।। 5।। को पढ़ते पद संख्या 65 भी याद आता है राम राम रट राम राम रट राम राम जप जीहा ।दिन रात चातक की तरह पपीहे जैसे राम राम रट ।राम जप तीन बार लिखा है अर्थात मन वचन और कर्म सेभगवान को याद किया जाये। राम से बड़ा राम का नाम है। राम जाप की बड़ी महिमा है । नानक नाम जहाज है जपे तो बेड़ा पार ।

हम सभी वचन से यानी मुख से तो जरूर राम राम करते हों पर मन संसारी विषयों में उलझा रहता है। माला तो कर में फिरे जीभ फिरे मुख माही मनुआ तो चहू दिश फिरे ये तो सुमिरन नाही। और कर्म से तो बिल्कुल जीरो है मुख में राम बगल में छुरी रखते हैं। बेड़ा तो रामनाम से ही पार होता है।

तेरे राम ही करेंगे बेड़ा पार उदासी मन काहे को डरे

नैया तेरी राम हवाले लहर लहर हरि आप संभाले हरि आप ही लगाये बेड़ा । इस भव सागर से पार उतर ने के लिए केवल रामनाम ही नाव है उसी से पार उतरा जा सकता हैं। हमारे साथ है रघुनाथ तो किस बात की चिंता।चरण में रख दिया जब माथ।शरण में आ गए जब नाथ तो किस बात की चिंता।चिंता करने के लिए राम जी है न।

एक ही साधन है जिससे रिद्धि-सिद्धि तक प्राप्त की जा सकती है। इस कलि रूपी रोग ने योग संयम ।समाधि सब को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। इसलिए केवल नाम जाप ही सहारा है। भला हो बुरा हो सीधा हो उल्टी प्रकृति का हो सब का अंत में उसी राम जी से काम पड़ता है उसी को भजना होता है। जन्म लके बाद बालक के कान में राम नाम ही फूंका जाता है। गुरु दीक्षा लेते रामनाम ही देते हैं और दुनिया छोड़ते सब की रामनाम सत्य है हो जाती है। यह नभ वाटिका बहुत फल फूल रही है।यहां बहुत से आकर्षण हैं पर ये सब आकाश। में धुएँ से बनने वाले बादल हैं जिनमें हम बहुत सी आकृतियां अपने मन से बनाते रहते हैं जो कुछ ही समय में विलीन हो जाती है। इसलिए इनके झूठे रंग राग में मतभूल। जन्मते मरते बस राम ही काम आते हैं।संसार माया है झूठ है पानी केरा बुदबुदा। अस। मानुष की जात।देखते ही छुप जायेंगे जायेंगे ज्यों तारे प्रभात। ऐसा यह संसार है जैसा सेमल। फूल दिन दस के व्यवहार में राम नाम न भूल ।रहना नहीं देश विराना है। यह संसार काग़ज की पुडिया बूंद पड़े गल जाना है कांटे की बारी उलझ पुलझ मरजाना है। झाड़ और झांकर आग लगे जल जाना है।

राम नाम समम तत्व नास्ति वेदांत गोचर ।इसलिए बस राम जप राम जप और राम जप ।

जो राम का नाम छोड़ किसी दूसरे पर भरोसा करते हैं उनका हाल ठीक उसी प्रकार है जैसे कोई परोसी हुई थाली छोड़कर द्वार द्वार कुत्ते की तरह रोटी का टूक मांगता फिरता है। लोगों को तो राम राम रटते पूरी उम्र बीत जाती है। यहां तो अभी गिनती ही शुरु हुई है। रामा रामा रहते रहते बीती रे उमरिया । रघुकुल नंदन कब आओगे दासी की कुठरिया । इस कलियुग में केवल भगवान का नाम ही आधार है। कलियुग केवल नाम आधारा सुमिर सुमिर नर उतरे पारा। पर हम राम को भजते ही कब है भले ह कोई कोई कितने भी चेतावनी गीत गाता रहे।।तूने राम जपन क्यों छोड़ दिया/काम न छोड़ा क्रोध न छोड़ा। लोभ न छोड़ा मोह न छोड़ा/तूने राम रतन धन छोड़ दिया। तूने राम भजन क्यों छोड़ दिया। राम भजन को छोड़ना ऐसे ही है जैसे कोई परमगंग को छोड महातम दुरमति कूप खनाबे या परिहर राम भगत भगत सुर सरिता आश करत ओस कण की। अब तो राम जी एक ही प्रार्थना है भगवनमेरी नैया उस पार लगा देना। तक तो निभाया है आगे भी निभा देना।

नमिता की चौपाल

नमिता राकेश
वरिष्ठ साहित्यकार
दिल्ली

(1)"**एक आम भारतीय लड़की**"

वह यूं ही बैठी थी
एक तरफ़
सबसे अलग थलग हो कर
सारे खिड़की दरवाज़े बंद कर के
पर क्या सबसे अलग होकर
अलग रह पाना आसान है ?
बहुत कोशिश करने पर भी
मन तो अलग नहीं रह पाता !
फिर दिल ?
वो तो वैसे ही पागल होता है
ज़रा सा दुनिया से कटे नहीं
कि, मचलने लगता है
दिखाने लगता है सपने
नए-नए, अनजाने, अनदेखे
पर कोई उसकी सुने तभी तो और वह तो
दिल व दिमाग़ के सभी दरवाज़ों पर
कब का ताला लगा चुकी थी
इच्छाओं और भावनाओं का
गला घोंट चुकी थी
उसने सीख लिया था
दूसरों के लिए जीना
जलना, मोम मोम पिघलना
और ख़त्म हो जाना
अपने मन में झांकते हुए भी उसे अब डर लगता था
क्योंकि
अनगिनत तितलियां
पंख फड़फड़ाने लगती थीं लालसाओं के
पर निकलने लगते थे
सपने रंगीन होने लगते थे
पर वह क्या करती
कुछ भी उसके बस में नहीं था उसका सफ़र
सिर्फ
घर से घर तक सीमित था
और
उसका जीवन सीमित था
इस घर से उस घर तक
डोली से अर्थी तक
वह भारतीय संस्कार में
पली-बढ़ी
एक आम भारतीय लड़की थी विशुद्ध भारतीय !!

(2)

तुम्हें जीतना
बहुत आसान था
पर तुम्हें हारते हुए
नहीं देख सकती थी
इसलिए चाहते हुए भी
कोशिश नही की
और खुद हार गई
क्योकि तुम मुझे
हारते हुए देखना चाहते थे
और मैं तुम्हारी खुशी
बस यही फरक है
तुम में और मुझमें
तुम्हारी सोच
खुद पर केंद्रित रही
और मेरी तुम पर
लेकिन अब
मेरे बर्दाश्त और हारने की क्षमता
दम तोड़ने लगी है
तुमसे हारते हारते
मैं खुद से हार चुकी हूं
इसलिए
अब तुम
अपनी आदत बदल लो
और
मैं अपनी ।

चित्र : संजय राय
भदाव इण्टर कॉलेज थलईपुर
मऊ

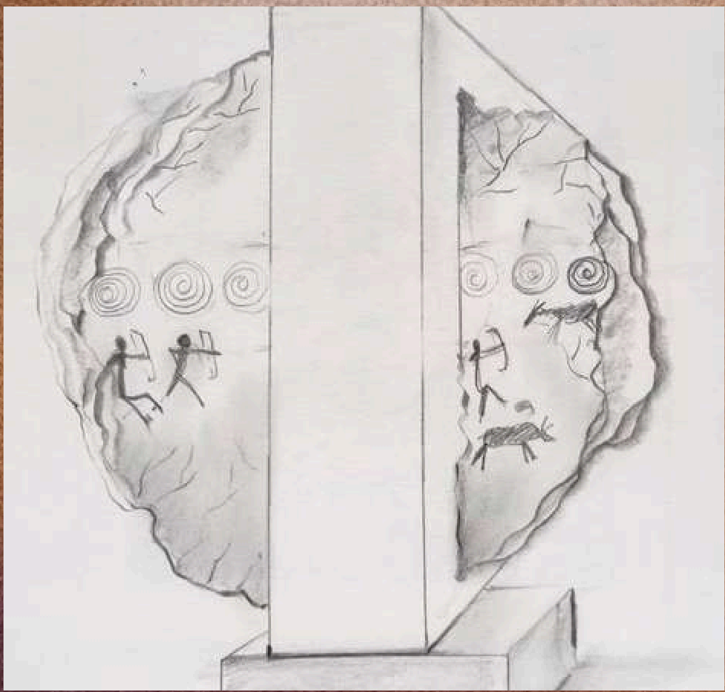

मुझमें एक संसार

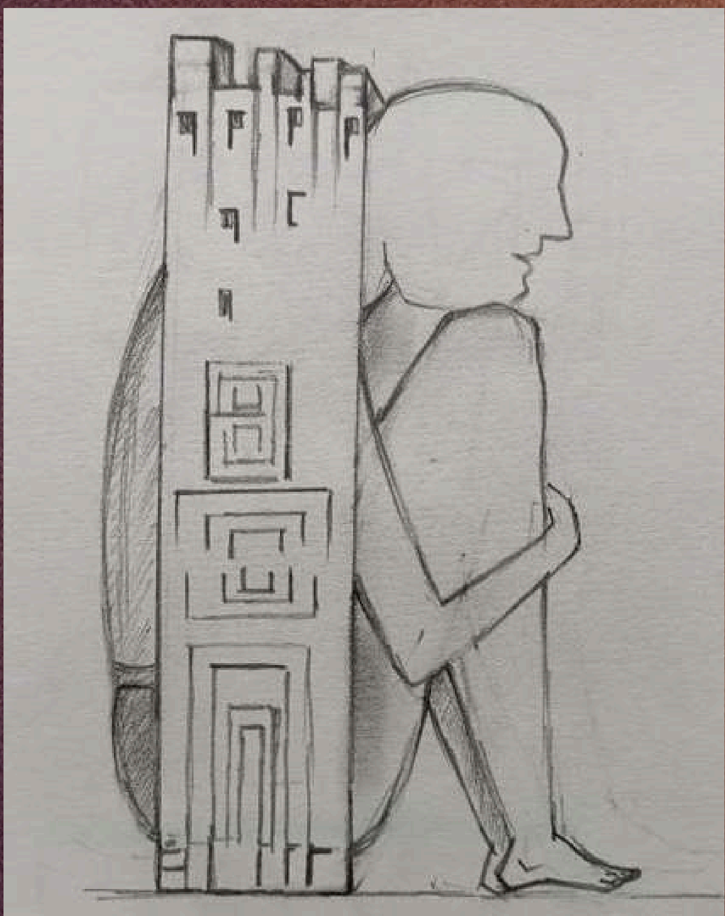

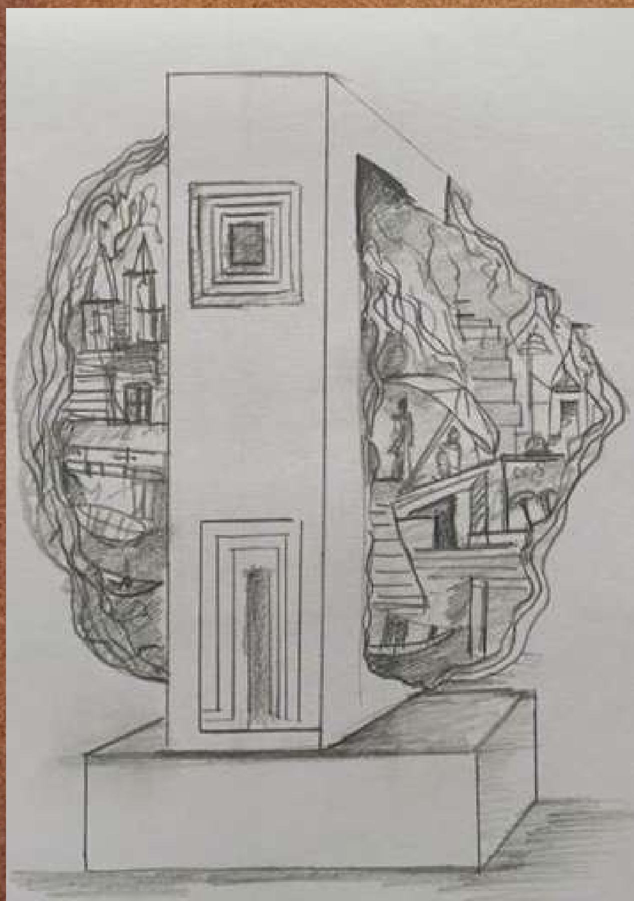

जून-जुलाई
2025

चित् भूमियां

विवेक मिश्रा

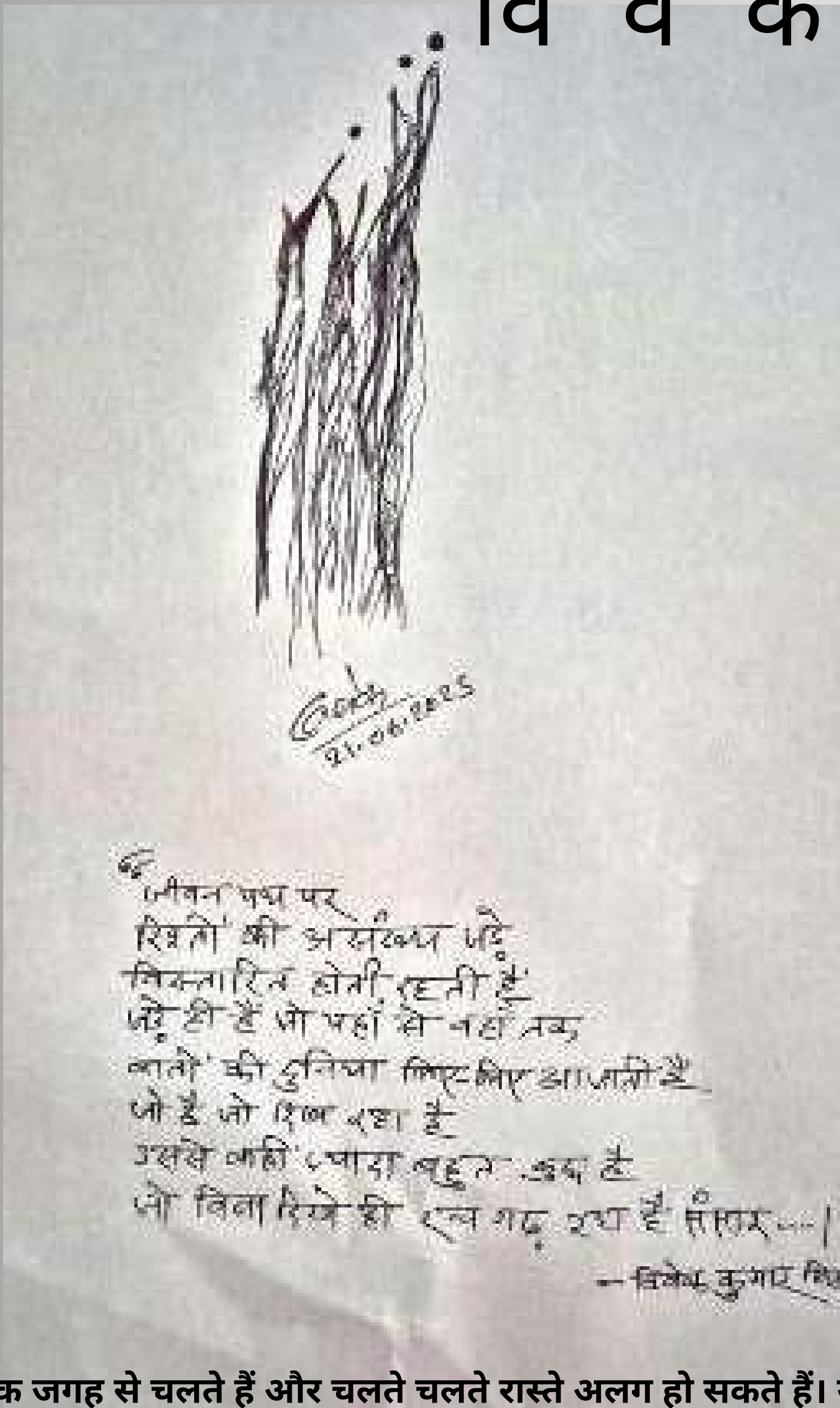

विवेक मिश्रा,
प्रसिद्ध लेखक, कवि
कोटा, राजस्थान

एक जगह से चलते हैं और चलते चलते रास्ते अलग हो सकते हैं। यह भी हो सकता है कि एक जगह से ही अलग अलग मंजिलों के लिए चल दिए हों। यह भी कह सकते हैं कि स्त्री पुरुष के बीच असमानता कम समान चित् भूमियां ज्यादा होती हैं। एक ही चित् में स्त्री -पुरुष साथ साथ पलते हैं और साथ साथ चलते हैं। हमारा आधार एक ही है एक ही जड़ से निकल कर अलग अलग रास्ते पर हम सब चल पड़ते हैं और कहते चलते हैं कि सब कुछ जीवन के संदर्भ से आता है।

डॉ. रमेश चंद मीणा
सहायक आचार्य,चित्रकला
राजकीय कला महाविद्यालय
कोटा, राजस्थान

अमलतास: स्वर्णपुष्पी

**लाजवर्द[1] नभ तले झुके,
झूमर ज्यों अनुरागी।
गऊ-गोली[2] सी दमके शाखा,
त्यों पीत-राग चिरागी।**

**हल्दी-तबक सी किरणों में घुल,
वसली[3]-पेवड़ी[4] पोत चढ़ाया।
रस-विलसिन मन की क्यारी में,
प्रेम-गंध फिरोज़ी[5] लहराया।**

(2)

**नव हरिताल[6] तनों से बहता ,
अमृत फ़ुहारों का साया।
कहता ऋतुराज पीत कलियों से,
फिर वसंत बहार मैं लाया।**

**झरते पत्ते; ठेठ जेठ में,
ले नव पंख लगाए।
स्वर्णपुष्पी के नव अंकुर अब,
जीवन राग सुनाए।**

(3)

**दीप-ज्योति त्यों फैली डालियाँ,
मंदिर-पथ सुगंधित।
काँस थाल ज्यों सजे आरती,
चरण-पद्म सम भगवत।**

**दीप थाल में सँवर फूल,
धूप धुले मन-काया।
लेपिसलाजुली[7] नभ में उठता,
नाम-सुमर हरि माया।**

(4)

**छाँव बिछे यों शांति-सुमन सी,
करे धूप अभयदान।
शाख-सघन स्वर्णमाला कहती,
प्रकृति-मानव सम जान।**

**नभ-गंधों से बतियातें पात,
नीरव स्वर लहराए।
अमलतास हरिताल लताएँ,
कोमल तान सुनाए।**

(5)

**रामरज़[8] रंग में कुंज सजें,
पुष्प झरें यों चुपचाप।
सोनें सा बिखरे आनंद,
बाँटे पीत पदचाप।**

**स्वर्णपुष्पी अमलतास कहे —
जीवन-लीला बहुरंगी।
मैं हूँ; धूप में छाँव अनंत,
उत्सव सा अनुरंगी।।**

शब्दार्थ-:

**1.लाजवर्द- नील वर्ण
2.गऊ-गोली- गौ पाणत प्रविधि से सृजित पीत वर्ण
3.वसली-महीन क़ागज़ को तह दर तह चिपकाकर तैयार चित्रांतराल,
4.पेवड़ी- पीत वर्ण
5.फिरोज़ी- नील-हरित वर्ण के बीच की आभा,
6.हरिताल- पीत खनिज वर्ण
7.लेपिसलाजुली- पत्थर से बना आसमानी वर्ण
8.रामरज़- श्यामल-पीत आभा मिश्रित वर्ण**

अनुपम परिहार
सम्पादक, सरस्वती पत्रिका
प्रयागराज, उ.प्र.

बड़े लोग

बड़ी-बड़ी वस्तुएं
बहुत दूर से देखने पर
दिखलाई देती हैं... बहुत छोटी-छोटी
लेकिन
बड़े लोगों को बहुत दूर से देखने पर
वह
दिखलाई देते हैं... बड़े...... बहुत बड़े !
उन्हें कभी
जाकर देखना....
बहुत करीब से
टूट जायेगा तुम्हारा विश्वास
धरे के धरे रह जाएंगे
भौतिक विज्ञान के सभी सिद्धान्त !
बड़े लोग
बहुत नज़दीक से देखने पर तुम्हें
लगेंगे छोटे... बहुत ही छोटे !!

जीवन के आयाम

जब दृग से आंसू का सागर,
शोषित होने लगता है,
तब करुणा के सागर का,
अवलम्ब शेष रह जाता है।
जब तनु से सांसों की डोरी,
टूट एक दिन जाती है,
तब इस जग में कर्मों का,
अमरत्व शेष रह जाता है।
जब संबंधों की कटुता से,
उर रोज गुजरने लगता है,
तब स्मृति की तुरपाई का,
बस खोल शेष रह जाता है।
जब धरती का वक्षस्थल भी,
पापों से भरने लग जाए,
तब इस जग में विधि का केवल,
न्याय शेष रह जाता है।

नेहा श्रीवास्तव
शिक्षिका, के. पी. गर्ल्स इंटर कालेज,
प्रयागराज, उ.प्र.

डॉ. सन्तोष कुमार मिश्र
प्राचार्य,
श्री लाल बहादुर शास्त्री इण्टर कॉलेज
चायल, कौशांबी

आओ लिखें हम

आओ लिखें हम आज अपनी
इस कदर तकदीर को
जिसमें सुकूं हो, दर्द ना हो
बस खुशी हो
उम्र भर कह ना पायें
फिर कभी अपनी जरूरत की
तफसील को

अलशिफा हर मर्ज का हो
भूल कर भी पाप ना हो
भर लें हम तौफीक इतनी
इल्मे अमल से इस जमीं को

शख्सियत हो इस तरह
तौकीर में अभिमान ना हो
ला सकें हम भाव इतना
हार में भी जीत को
आओ लिखें हम आज अपनी
इस कदर तकदीर को

भोर की नव किरन जब'थिरकने लगी,
प्रेम की गागरी तब छलकने लगी।

रात हो या कि दिन जब से हो तुम मिले,
हर घड़ी हर जगह में चहकने लगी।

इस कदर प्यार के रंग में में रंग गयी,
बिन पिये भावनाएं बहकने लगी।

खूबसूरत फ़ज़ाओं की रंगीनियां,
देखकर कोकिला भी कुहकने लगी।

इन नशीली हवाओं का है ये असर,
प्रीति की आग दिल में दहकने लगी।

जब कभी प्यार से तूने मुझको छुआ ,
बन के खुश्बू हवा में गमकने लगी ।

तुम हृदय की सरलता हो मैं हूँ क्षमा,
दृष्टि तुमसे लगी तो चमकने लगी।

क्षमा द्विवेदी
प्रयागराज

डा.स्नेह सुधा
कवयित्री एवं साहित्यकार
प्रवक्ता, के.पी.ग.कालेज, प्रयागराज

नवोन्मेष

जिसे पुरातन जग कहता है,
वही नवीनतम का अवयव है।
जो नव है वह भी तो हे मनु!
गत होने को उद्यत है।

धरती के बीजों का क्रंदन,
कब इन सुमनों ने जाना है।
अंधकार के नीरव पथ को,
कब विहान ने पहचाना है।
समाधिस्थ हो गये धरा में,
सुंदर सृष्टि सृजित हो जाये।
रंगहीन हो गये कि जिससे,
इन्द्रधनुष सा कल हो जाये।

पंचतत्व जन्मा जड़ चेतन,
किंतु किसे इसका चित है।
पल प्रतिपल की यही कहानी,
हर क्षण इसका उत्सव है।
कैसी अहंब्रह्मास्मि की बातें,
क्या है मापदंड जग का?
सब कपोल कल्पना कल्पित,
सत्य तो पगकंटक मग है।
अद्य इसे भूलेगा हंसकर,
किंतु अंत्य को सदा याद है।
वह स्वर्णिम जब उसे राम ने,
कंठ लगाया जो निषाद है।
कौन वर्ण है, कैसी काया,
मानव मुखरित मुस्कान एक है।
ऋदम् भले धैवत-निषाद हो,
किंतु स्नेह का गान एक है।

रामावतार सागर
कोटा, राजस्थान

ग़ज़ल

(1)

मेरे मन की बारिशों के रंग फीके देखकर
लोग कट जाते हैं आखिर संग तीखे देखकर
एक ज़िंदा लाश होना मुझमें देखो गौर से
कितना मुश्किल है अकेले यार जी के देखकर
प्यार रहता हो जहां पर झोंपड़ी हो या महल
राम रुक जाते हैं बरबस बैर मीठे देखकर
चार के बस दो हो जाना और दो का एक ही
ये तभी मुमकिन हुआ है आंख मींचे देखकर
बारहा होकर भी मेरा हो नही पाया मगर
अब उसे क्यों छोड़ दूं उसके सलीके देखकर
वो कहां तक देखता राहें विसाले यार की
चल दिया मंजिल की जानिब रस्ते सीधे देखकर
आ गये सागर से मिलने यार कुछ ऐसे भी हैं
इस अकेलेपन में मुझको तन्हा पीते देखकर

ग़ज़ल (2)

लोग खुद ही मौत का सामान हो बैठे रहे
हादसों से बेख़बर अनजान हो बैठे रहे।

आस्था दीवार पर सर टेक कर बैठी रही,
देवता भीतर कहीं पाषाण हो बैठे रहे।

चालबाजी और फरेबी दौर में ज़िंदा हैं हम,
अपने भीतर अर्थ की दूकान हो बैठे रहे।

इन पहाड़ी रास्तों पर जान लेवा है सफ़र,
कार की सीटों पर सब सामान हो बैठे रहे।

रास आती है जिन्हें भी दासता सुल्तान की,
वो सभी दरबार में दरबान हो बैठे रहे।

मयकदे ने तोड़ डाले यूं भी सबके सब भ्रम,
जब तलक साकी नहीं बेजान हो बैठे रहे।

रेत पर सागर की लहरें जब पहुंचती हो तभी,
हाथ पकड़े हाथ में इक जान हो बैठे रहे।

लघु कथा- बिन पते के पहुंची दादी

विजय गर्ग
सेवानिवृत्त प्रिंसिपल मलोट
पंजाब

बहुत देर से पिंटू देख रहा था। एक अम्मा क्रिकेट के मैदान के एक कोने से दूसरे कोने पर आ-जा रही थीं। उनके सिर पर सामान की गठरी भी थी। शायद वह रास्ता भूल गई थीं। पिंटू से जब रहा न गया तो अपने मित्र जीतू से कहा, 'यार! चल बूढ़ी अम्मा की मदद करते हैं। बेचारी न जाने कब से भटक रही हैं'।
जीतू ने हामी भरते हुए कहा कि 'हां, भाई ! हां, चलते हैं'।
हालांकि उसने बल्लेबाजी वाले पैड पहन रखे थे। उसकी बारी कभी भी आ सकती थी, लेकिन एक बुजुर्ग को परेशान होते हुए देखते भी नहीं बन रहा था। आदर भाव में दोनों अम्मा जी के समक्ष थे। पिंटू ही बोला, 'आंटी जी! आपको जाना कहां है ?"
अम्मा जी एकटक उन्हें देखती रह गईं। फिर तनिक मुस्कराते हुए बोलीं-
'बच्चो ! मैं आंटी कहां से दिख रही हूं। तुम दादी नहीं बुला सकते ?"
इस पर दोनों उलझन में पड़ गए। दोनों कुछ कहते इससे पहले वे ही बोलीं, 'बच्चो ! मैं रास्ता भूल गई हूं । मुझे अपने बेटे के घर जाना है। उफ्फ! जिस कागज के टुकड़े पर पता लिखा था वह मिल नहीं रहा। मैं मथुरा से आई हूं। छह महीनों में सब बदला-बदला सा लग रहा है यहां इस मौजी बाग में। कुछ समझ नहीं आ रहा कि इतने जाने-पहचाने रास्ते को भूल कैसे गई'।
जीतू पूछने लगा, 'दादी जी! मौजी बाग यहां तीन हैं। आपको कौन से बाग में जाना है। मौजी बाग एक, मौजी बाग दो या साऊथ मौजी बाग ?'
'बेटे! गुरद्वारा है उधर । सीधे मेन रोड पर ही सरकारी फ्लैट है नीचे का' ।
'वो तो ठीक है, दादी जी ! ' बीच में बोल पड़ा था पिंटू, 'आपके पास कोई पता है नहीं तो पहुंचेंगी कैसे आप ?'

तभी जीतू बल्लेबाजी के लिए चल पड़ा था। उधर अरूण आउट हो कर जब आया तो पूछने लगा, 'क्या बात है ? अम्मा जी को क्या हुआ ?' उसे पूरी बात बताई गई तो वह तपाक से बोल पड़ा, 'अम्मा जी ! हमारे जैसा आपका भी कोई पोता होगा जो क्रिकिट फिर्किंट खेलता होगा' । इस पर वे बोलीं, 'हां, हां, गोपाल है मेरा पोता। वो भी जबर बैट -बाल खेलता है'। नाम सुन कर बच्चे असमंजस में थे। एक-दूसरे की शक्ल देख कर चुप थे। तब अरूण ही बोला, 'वो पढ़ता कहां है, दादी ?' 'पता नहीं, बेटा! मुझे तो बस इतना ही पता है कि जहां बस खत्म होती है वहां से सीधा जाना है गुरूद्वारे के पास । कम्बख्त, ये मरा पुल कब बन गया। उधर, बेवकूफ बस वाले ने भी यहां किधर उतार दिया मुझे जबकि मैं पहले यहां आती-जाती रही हूं। मगर जरा भी याद नहीं आ रहा कि मुझे किधर जाना है।' तभी बल्लेबाजी कर रहे एक बच्चे के सिर में जोर से . बाल लगी। वह वहीं तिलमिला कर गिर गया था। बच्चे आपस में बातें कर रहे थे। बालिंग कर रहा लड़का गायब हो गया था। एक बच्चा बोल पड़ा, 'बाउंसर मारी है'। तभी एक दूसरे बच्चे ने कहा, 'यार, सर ने बाउंसर के लिए मना किया हुआ है'। उसी वक्त वो अम्मा जी चिल्लाईं, 'अरे बच्चो ! याद आया मेरे गोपाल को भी तो बाक्सर कहते हैं'। 'दादी! बाक्सर नहीं बाउंसर' अरूण उछल कर बोला था । तब दादी ने तुरंत दोहराया, 'शायद बाउंसर ही ।' 'वाह दादी ! बाउंसर को तो हम खूब अच्छे से जानते हैं। अगर वही आपका पोता है तो चलिए, दादी ! मैंने उसका यानी आपका घर देखा हुआ है। वह हमारे साथ खेलता भी है।' पांच मिनट में ही वे घर पहुंच गए थे। दादी को अचानक देख गोपाल चीख पड़ा-दादी ! मेरी दादी दादी के चरण स्पर्श कर उसकी नजर पिंटू की ओर गई । अबे, मेरी दादी तुझे कहां मिलीं। '
तब पिंटू ने पूरा किसा सुनाया। फिर जोर से बोला, 'अरे यार, तुझे बाउंसर जो पुकारते हैं, ना । इसी नाम से हम तुझ तक पहुंचे हैं। रास्ते में तेरी दादी भी ठीक कह रही थीं, बेटा, काम ऐसा करो कि लोग तुम्हें नाम से नहीं बल्कि तुम्हारे काम से पुकारें ।
सच में बात तो मजेदार है। बाउंसर नाम ने ही दादी को बिना पते के घर पहुंचा दिया था।

यात्राओं की एक सम्मोहक दुनिया

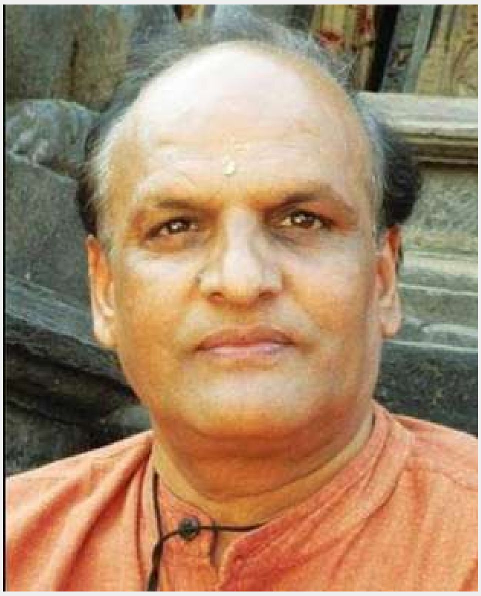

गिरीश पंकज
वरिष्ठ साहित्यकार
रायपुर, छत्तीसगढ़

प्रवास व्यक्ति को नए अनुभव-लोक से समृद्ध करता है। यात्राएँ हमें नित नवीन भी करती हैं। यात्राओं के बहाने हम ऐसे अनुभव संसार से जुड़ते हैं जो हमें प्रफुल्लित करते हैं और कहीं-न-कहीं हमको गहरी समझ भी प्रदान करते हैं। यात्राएँ हमारी जड़ता को तोड़ती हैं। जब हम यात्रा पर निकलते हैं तो इस दुनिया को निकट से और अपनी आँखों से देखते हैं। वरना कुएँ के मेंढक की तरह हम अपनी सीमित दुनिया में सिमट कर ही रह जाते हैं। मैंने जब भी देश-विदेश की यात्राएँ की हैं, तब-तब कुछ बेहतर अनुभवों के साथ लौटा हूँ। लौट कर कुछ यात्रा-संस्मरण भी लिखें हैं। हिंदी साहित्य की दुनिया में निरंतर सक्रिय कवयित्री नमिता राकेश के यात्रा-संस्मरण को पहली बार देख रहा हूँ,तो बड़ी प्रसन्नता हो रही है। उनके साथ मैंने भी एक-दो यात्राएँ की हैं। मै "सफ़र में हूँ"' में इनके आठ महत्वपूर्ण यात्रा-संस्मरण हैं। अपने यात्रा-वृतांतों को नमिता ने बहुत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। यात्रा-संस्मरण की विशेषता यही होनी चाहिए कि उसकी भाषा बतियाती हुई रहे। वहाँ आंकड़ेबाज़ी न रहे। जो कुछ भी विवरण हो, अपनी निजी सूचनाओं के आधार पर ही रहे तो बेहतर। उसमें मौलिकता होनी चाहिए। अब तो गूगल के माध्यम से हम किसी भी देश या शहर के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन हम उस जगह जाकर तमाम चीज़ो को जब निकट से देखते हैं और लिखते हैं, तो उसकी बात ही निराली होती है । नमिता जी के संस्मरण में मैंने यही विशेषता देखी । फ़िर चाहे उन्होंने भूटान की यात्रा की हो, चाहे वृंदावन की या कुम्भ स्नान करने प्रयागराज गई हों। नालंदा विश्वविद्यालय को देखा हो या फिर बुजुर्गों के साथ समय बिताया। हर संस्मरण की भाषा उनकी गहरी आत्मीयता से परिपूर्ण हैं।उसका वर्णन कुछ इस तरह से हुआ है कि पाठक पाठक न रहकर, दर्शक बनकर लेखिका के साथ-साथ चलता है। किसी भी यात्रा-संस्मरण की यही विशेषता होनी चाहिए कि पाठक के सामने दृश्य बनता चले। उसे लगना चाहिए कि वह संस्मरण पढ़ नहीं रहा, वरन देख रहा है।

नमिता जी का भूटान यात्रा का संस्मरण दिलचस्प है। इस संस्मरण को पढ़कर हमें दो-तीन सबक मिलते हैं -- जैसे, किसी होटल में जाओ तो यह देख लो कि कहीं कमरे का टॉयलेट या वाशबेसिन तो टूटा-फूटा नहीं है, वरना होटल का मालिक वहां रुकने वाले यात्री से ही पहले से टूटे हुए टॉयलेट का पैसा वसूल सकता है। दूसरी बात यह है कि विदेश में कहीं भी जाएँ तो सबको एक साथ रहना चाहिए। इधर-उधर अकेले भटकना नहीं चाहिए वरना दूसरे साथियों को इंतज़ार करते हुए तकलीफ होती है। अनावश्यक रूप से सोना वगैरह खरीदने के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। तीसरी बात यह है कि भूटान जैसे अनेक देश ऐसे हैं, जहां बहुत सुंदर यातायात व्यवस्था और साफ-सफाई का प्रबंध दिखाई देता है।तब हमें अपने देश पर दु:ख होता है कि हम यहां ऐसा क्यों नहीं कर पाते। ऐसे संस्मरण पढ़कर पाठक को प्रेरणा मिलती है कि हमें भी एक अच्छा नागरिक बनकर रहना चाहिए। इसलिए कहा जाता है कि यात्रा-संस्मरण पाठक को बहुत कुछ नसीहत दे जाते हैं।

बुजुर्गों से जुड़े दो संस्मरण दिल को छू लेने वाले हैं। भारतीय समाज इस समय तथाकथित आधुनिकता के मकड़जाल में फंस कर बुजुर्गों से दूर होता जा रहा है। खास कर नई पीढ़ी। बुजुर्ग स्वयं को अकेला और उपेक्षित महसूस करने लगे हैं। इसलिए भी यह जरूरी है कि उनको प्रसन्न रखा जाए। इस हिसाब से लेखिका नमिता ने खुद अपनी ओर से पहल करके बुजुर्गों के लिए एक यात्रा का इंतजाम किया। जिसका सकारात्मक असर हुआ कि सारे बुजुर्ग बेहद प्रसन्न हुए।

उनकी भावनाओं को लेखिका ने कुछ इस तरह से लिपिबद्ध किया है, "किसी वृद्धाश्रम में जाने के बजाय वो सम्मान से अपने घर में अकेले रह रहे हैं, लेकिन उम्र का तकाजा उन्हें घरों में अब तक कैद किए हुए था, लेकिन अब वह हमारे साथ घुल मिल चुके थे। जीने की उमंग फिर लौट आई थी, यह उनके चेहरे बता रहे थे।" इस यात्रा वृतांत में सीखने वाली बात यह है कि हम जब बुजुर्गों को अपने साथ ले जाएं, तो उनकी देखभाल कैसे हो उनकी देखभाल कैसे हो, इसके सुंदर टिप्स से इस में दिखाई देते हैं। जैसे सभी बुजुर्गों को रिबन लगाए गए, जो पहले से ही नॉट लगाकर तैयार किए गए थे। यह एक तरह का पहचान चिन्ह था ताकि बुजुर्ग साथी भीड़ में खो जाने की स्थिति में आसानी से ट्रेस हो जाएँ। ऐसी सावधानियाँ बहुत ज़रूरी हैं ।

'हम भी कर आए कुम्भ स्नान' काफी रोचक यात्रा संस्मरण कहा जा सकता है। लेखिका का अपना सामाजिक प्रभाव है इसलिए प्रयागराज की यात्रा सुखद रही। जाम से भी उन्हें मुक्ति मिली। वरना ज्यादातर लोगों का अनुभव यही रहा कि वे घंटों जाम में फँसे रहे। लेखिका में धार्मिक आस्था काफी प्रबल थी इसलिए उनके सारे काम आसानी से होती चले गए। हमारे यहां कहावत है 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। मन अगर पवित्र है तो सारी बाधाएँ दूर हो जाती हैं। यही कारण है कि लेखिका के परिवार की प्रयागराज यात्रा बहुत सुखद रही। ट्रेन में ही उन्होंने अपना वैवाहिक वर्षगांठ मनाया, जिसे देखकर आसपास के यात्री भी प्रसन्न हुए। कुंभ स्नान के समय जिस बोट में लेखिका का परिवार था, उसमें अमेरिका से आया एक परिवार भी उन्हें मिल गया जो महाकुंभ स्नान करने सीधे चला आ रहा था। तब लेखिका ने जो बात सोची वह सनातन संस्कृति के प्रति उनके लगाव को दर्शाता है। उन्होंने सोचाकि "अच्छा हुआ हम आ गए वरना लोग तो यूएसए से आए हुए हैं और हम इंडिया में रहकर भी अगर स्नान नहीं कर पाए तो कितना अफ़सोस होता। लोग कितने एफर्ट लगाकर कितने घंटे का सफ़र करके सिर्फ़ स्नान करने आए हैं और हम ट्रेन, स्टैंपैड,धक्कामुक्की से घबराकर अपने ही घर में बैठे होते।"

लेखिका की दुबई यात्रा भी यादगार रही। ' मेरे सपनों का देश ' शीर्षक से देखा गया यात्रा वृतांत दुबई के सौंदर्य का जीवन का वर्णन करता है। यात्रा वृतांत भी पाठकों को यह बता सकता है कि विदेश यात्रा करने के पहले हमें कैसी तैयारी करनी चाहिए। दुबई के चुनिंदा दर्शनीय स्थलों का सुंदर वर्णन लिखने किया है। दो साल पहले मैंने भी सपरिवार दुबई यात्रा की इसलिए संस्मरण को पढ़ते हुए बहुत अच्छा लगा कि जिन-जिन दर्शनीय स्थलों का हमने आनंद लिया, उन सब जगहों तक लेखिका का परिवार भी गया । लेखिका ने "नालंदा विश्वविद्यालय" का यात्रा वृतांत भी लिखा है। खंडहर हो चुके नालंदा को मैंने भी राजगीर प्रवास के दौरान देखा था और "मैं नालंदा बोल रहा हूँ " नामक लंबी कविता भी लिखी थी। एक समय था जब पूरी दुनिया में नालंदा विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठा थी। यहां विद्या अध्ययन के लिएबाहर के युवा आया करते थे। लेकिन दुर्भाग्य की बात है की बख़्तियार खिलजी नामक एक आक्रांत ने विश्वविद्यालय को नष्ट कर दिया। लेखिका को भी नालंदा की भव्यता का बोध हुआ और इस बात के लिए उन्हें काफी दुख हुआ कि हमारी धरोहर को एक मूर्ख आक्रांता ने नष्ट कर दिया। दुर्भाग्य की बात है उस आक्रांत के नाम पर एक स्टेशन भी है। नमिता ने नालंदा के सौंदर्य का कम शब्दों में भावपूर्ण वर्णन किया है । उनकी यह पंक्तियां दिल को छू लेने वाली हैं, "दूर तक फैली बड़ी-बड़ी इमारतों के खंडहर, कक्षाओं के टूटे प्राचीर, ऊंची सीढ़ियां हरे भरे मैदान आदि अपनी आपबीती सुना रहे थे। मैं एक-एक दर ओ दीवार को अपनी आंखों में बसा लेना चाहती थी।"

' एक ऐसी भी यात्रा' शीर्षक वाला लेख यात्रा- वृतांत तो नहीं है लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा के ज़रिए मनुष्य अपने शरीर को पुष्ट और रोगमुक्त कर सकता है। इसकी सुंदर जानकारी इसमें मिलती है । लेखिका एक आम नागरिक की तरह प्राकृतिक चिकित्सा कैंप में जाना चाहती थी लेकिन वहां उनकी लेखकीय प्रतिभा से कुछ लोग परिचित निकल गए इसलिए दिनभर तमाम तरह की थेरेपी करने के बाद रात को खाने के बाद लेखिका की काव्य प्रतिभा का सबने आनंद लिया। लेखिका चूंकि मंचों पर काव्य पाठ करती रही हैं इसलिए उन्होंने अपनी प्रतिभा का वहां भी जमकर प्रदर्शन किया।बेशक यात्रा वैसी यात्रा नहीं थी जैसी यात्राएं लेखिका करती रही हैं, लेकिन अपने इस पंद्रह दिवसीय प्राकृतिक चिकित्सा को उन्होंने बेहद भावपूर्ण तरीके से अंत में लिपिबद्ध करते हुए कुछ इस तरह व्यक्त किया कि "यह यात्रा भले ही एक स्थान से दूसरे स्थान जाने की न हो पर यह यात्रा बाहर से अंदर जाने की थी। स्व की तलाश में बाहरी दुनिया से अपनी निजता तक की यात्रा थी। इसका अहसास शब्दों में बयां नहीं किया जा सकता।"

कुल मिला कर यह अनोखा यात्रा-संस्मरण लेखिका नमिता राकेश के सहज, सरल, उदात्त, जीवंत व्यक्तित्व से परिचय कराता है। पता चलता है कि उनमें मानवीय मूल्य बचे हुए हैं । इसीलिए वहसनातन मूल्यों का भी आदर करती हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस यात्रा संस्मरण को लोग बड़े चाव से पढ़ेंगे। लेखिका की बोधगम्य लेखन शैली के कारण संस्मरण का स्वाद दो गुना हो जाता है। लेखिका को बधाई और शुभकामनाएँ!

कृतिका सिंह के कार्टून

कृतिका सिंह जी उभरती हुई कार्टूनिस्ट हैं, जीवन के विविध पक्षों पर आपके सीधे हस्तक्षेप करते कार्टून बहुत लोकप्रिय हैं, आप कृतिका जी को उनके फेसबुक पेज Kritika cartoonist (https://www.facebook.com/cartoonistkritika?mibextid=ZbWKwL) पर फॉलो भी कर सकते हैं

प्रस्तुत है कृतिका जी के जीवंत कार्टून :

वीथिका ई पत्रिका :आपसे आपकी बात

वीथिका ई पत्रिका साहित्य, कला, संस्कृति और विज्ञान को समर्पित मासिक ई पत्रिका है. आप हमारे वेबसाइट www.vithika.org से पत्रिका डाउनलोड कर सकते हैं, व लेखों, रचनाओं पर हमें अपने विचार भी भेज सकते हैं. वीथिका ई पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, लेखक के अपने विचार हैं, इनसे या इनके विचारों से पत्रिका या पत्रिका की सम्पादकीय समिति किसी प्रकार की सहमति नहीं रखती.

हमें अपनी रचना या लेख भेजने के लिए आप उसे हिंदी भाषा में टाइप कर हमें जीमेल या whatsapp कर सकते हैं :

Gmail : vithikaportal@gmail.com
whatsapp: 8175800809